उबाऊ स्कूल

अरविन्द गुप्ता

'पढ़ने और सिखाने का काम काफी जोखिम भरा है। खासकर बाहर से किसी विदेशी पाठ्यक्रम को पलास्तर करना। बच्चों के अनुभव स्वंय इतने सम्पन्न होते हैं इसलिए बाहर से पलास्तर का काम ही गलत है। बच्चे के अंदर इतना कुछ भरा जो है! काश मैं बच्चों को उनके खुद के अनुभवों के माध्यम से सिखा पाती? तब मुझे कोई खास मेहनत मशक्कत भी नहीं करनी पड़ती। तब स्पर्श मात्र से बच्चों के अंदर छिपा ज्वालामुखी फूट पड़ता।'

– 'टीचर' पुस्तक की लेखिका सिल्विया ऍश्नट वॉर्नर

ब्रिटिश टेलीकॉम कम्पनी का एक इश्तहार है – 'चिल्ड्रन वॉक टू स्कूल, चिल्ड्रन रन अवे फ्रॉम स्कूल' (यानि बच्चे स्कूल जाते समय धीरे-धीरे जाते हैं, पर छुट्टी होते ही घर की ओर दौड़ते हैं।)। स्कूलों की वास्तविकता को यह इश्तहार बखूबी दर्शाता है।

बच्चे स्कूल में क्या करते हैं? वे एक यूनीफॉर्म पहनते हैं और भारी बस्ता ढोते हैं। स्कूल की घंटी बजते ही सभी छात्र प्रार्थना या असेम्बली के लिए एकत्रित होते हैं। उसके पश्चात वे चुपचाप, कई बार मुंह पर ऊंगली रखकर अपनी-अपनी कक्षाओं में जाते हैं। क्लास शुरू होती है। टीचर बोलती है, बच्चे सुनते हैं, उत्तरों को कापी में लिखते हैं, उन्हें रटते हैं जिससे कि अगली परीक्षा में उन्हें उन्हीं शब्दों में लिख पायें। स्कूल का वास्तविक जीवन से अक्सर बहुत कम लेना-देना होता है। कक्षा में बच्चे अपनी कुर्सी या बेन्च पर स्थिर बैठे रहते हैं। उन्हें चलते-फिरने का कोई मौका नहीं मिलता। बच्चे चुपचाप बैठकर टीचर की बात सुनते हैं और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। टीचर सर्वज्ञानी होता है, वो आदेश देता है, निर्णय लेता है, मूल्यांकन करता है और सजा देता है।

स्कूल प्राकृतिक सीखने के तरीके की खिलाफत करते हैं। घरों में बच्चे अपने माता-पिता और अन्य बुर्जुगों से सीखते हैं। साथ-साथ वो अपने छोटे भाई-बहनों को सिखाते भी हैं। परंतु सभी स्कूलों में हम-उम्र के बच्चों को चुनकर एक क्लास में डाला जाता है। कक्षा में उनका सम्पर्क व्यस्कों से लगभग कट जाता है। वो केवल अपनी क्लास टीचर को ही जान पाते हैं और इस प्रकार बड़ों से सीखने पर पाबंदी लगती है। टीचर के पास अक्सर कुशलताओं के नाम पर महज कागज की एक डिग्री होती है। यानि अपने से कम या ज्यादा उम्र के लोगों के साथ बच्चों का सम्पर्क कट जाता है। इससे उनके अनुभवों का दायरा फैलने और व्यापक होने की बजाए और संकुचित हो जाता है।

बहुत से शिक्षक और पालक मानते हैं जब बच्चे का स्कूल में दाखिला होता है तो वो एक कोरी स्लेट होता है जिस पर किसी भी राज्य सरकार के पाठ्यक्रम को आसानी से लिखा जा सकता है। अन्य शब्दों में बच्चा मिट्टी का एक लौंदा होता है जिसे आसानी से किसी भी रूप में ढाला जा सकता है। यह बात तो ठीक है कि जब बच्चे का स्कूल में दाखिला होता है तो वो छोटा होता है और बहुत कुछ सीखने को आतुर होता है। पर चार-पांच साल की आयु में जब वो पहली बार स्कूल जाता है तब तक वो दुनिया का काफी अनुभव कर चुका होता है और उसके तमाम खट्टे-मीठे अनुभव होते हैं। बाल-केंद्रित शिक्षा पद्धति बच्चों के अपने अनुभवों को कभी नकारती नहीं है, बल्कि बच्चों के खुद के ज्ञान को सकारात्मक रूप से आगे बढ़ाती है।

परंतु अधिकांश स्कूलों में जो होता है वो इसके बिल्कुल विपरीत होता है। आज पाठ्य-पुस्तकें ही शिक्षा का पर्याय बन गई हैं। बहुत कम स्कूलों में ही अच्छे बाल साहित्य का कोई पुस्तकालय होता है। और जिन स्कूलों में लाइब्रेरी होती भी हैं, वहां भी वे अल्मारियों में कैद और बच्चों की पहुंच से दूर होती हैं। शायद ही कोई ऐसा स्कूल होगा जो बच्चों को पुस्तक मेलों या किताबों की दुकानों में जाकर पुस्तकें चुनने के लिए प्रेरित करता हो। सेंटर फॉर लर्निंग (सी एफ एल) बैंगलोर में एक ऐसा स्कूल है जिसने सालों से इस काम को किया है। हर शिक्षाविद् को इस स्कूल के सुंदर खुले पुस्तकालय को देखने जाना चाहिए।

बहुत से स्कूलों में 'जैक एक जिल वेन्ट अप द हिल' या 'रिंग-अ, रिंग-अ रोजिज' जैसे अंग्रेजी के बालगीतों को सुना जा सकता है। ऐसे गीत जिनका बच्चों की जिन्दगी से कोई ताल्लुक न हो को हम क्यों प्रोत्साहित करते हैं? शायद यह एक औपनिवेशिक विरासत है। अंग्रेजों ने हमें न केवल अंग्रेजी भाषा सिखाई वरन उसके साथ-साथ तमाम सांस्कृतिक प्रतीक भी विरासत में दिए। 'रेन-रेन गो अवे' एक ऐसा बालगीत है जो भारतीय बच्चों के ठोस अनुभवों से बिल्कुल उल्टा है। लंदन के

मौसम का मिजाज कुछ ऐसा है कि वहां लगभग हर रोज बादल छाये रहते हैं और रिमझिम होती रहती है। वहां बच्चे लगातार हो रही बारिश से तंग आकर बादलों और वर्षा को भगाना चाहते हैं जिससे कि वो बाहर जाकर खेल सकें। यही इस अंग्रेजी बालगीत का सार है। परंतु भारतीय बच्चों के अनुभव इससे बिल्कुल भिन्न होते हैं। गर्मी के मौसम में दिन भर गर्म हवा की लू चलती है, जमीन की छाती सूख कर फट जाती है। गर्मी की झुलसन से तंग आकर सभी लोग वर्षा हो यह प्रार्थना करते हैं। हिंदी में ही ऐसे तमाम लोकगीत हैं जो वर्षा के आगमन का पुरजोर स्वागत करते हैं। क्योंकि तमाम वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद अगर देश में कम बारिश हो तो अकाल आ जाए। वर्षा हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है और उसका स्वागत इस गीत में दिखाई देता है:

बरसो राम धड़ाके से, बुढ़िया मर गई फाके से
गर्मी पड़ी कड़ाके की, नानी मर गई नाके की
घबराई मछली रानी, देख नदी में कम पानी
पेड़ों के पत्ते सूखे, धोबी के लत्ते सूखे
तब सब मिलकर चिल्लाए, उमड़-घुमड़ बादल आए
ओले बरसे टप-टप-टप, सबने खाए गप-गप-गप!

बच्चों के पहले शब्द, गीत और कहानियां बेहद महत्वपूर्ण होते हैं। वे सभी बच्चे के अपने सांस्कृतिक परिवेश से लिए जाने चाहिए। अगर वे बच्चे के अपने अनुभव का अंग नहीं हुए तो वे जल्द ही उबाऊ बन जाएंगे।

यह सच घटना एक अमरीकी स्कूल की है। स्कूल एक गरीब इलाके में स्थित था जहां की अधिकांश आबादी नीग्रो लोगों की थी। इन अश्वेत बच्चों की पुस्तकें पढ़ने में कोई रुचि नहीं थी। स्कूल में इस स्थिति को सुधारने के कई प्रयास किए गए परंतु सभी विफल रहे। तभी वहां एक नई ट्रेनी टीचर आयी। उसका अनुभव कम था परंतु वो होशियार, संवेदनशील और उत्साही थी। उसे पाठ्यक्रम की किताबों और अश्वेत बच्चों की जिंदगी के बीच कोई कोई रिश्ता नहीं दिखा। शायद इसी लिए बच्चों की उनमें कोई रुचि भी नहीं थी। पर टीचर को अश्वेत बच्चों के जीवन में अपार संगीत दिखाई दिया। नीग्रो लोगों का जीवन संगीत से भरा-पुरा होता है। टीचर ने एक काम किया। उसने बड़े चार्ट शीट्स पर उन बच्चों के प्रिय गाने, मोटे-मोटे शब्दों में लिखे और उन्हें क्लास में टांग दिए। क्योंकि वे बच्चों के पसंनदीदा गाने थे इसलिए जल्द ही बच्चे उन्हें बड़े चाव से पढ़ने लगे। इसमें उन्हें बहुत मजा भी आया और धीरे-धीरे बच्चों की पढ़ने की क्षमता का भी अद्‌भुत विकास हुआ।